हम हिन्दू क्यों

मूललेखक (पंजाबी)
राजेन्द्रसिंह 'निराला'
अनुवादक
राजेन्द्रसिंह

भारत-भारती
नई दिल्ली

हम हिन्दू क्यों

मूललेखक (पंजाबी)
राजेन्द्रसिंह 'निराला'
अनुवादक
राजेन्द्रसिंह

भारत-भारती
नई दिल्ली

श्रावण २०४७
अगस्त १९९०

भारत-भारती २/१८, अन्सारी रोड, नई दिल्ली-११०००२ से प्रकाशित और सुमन प्रिंटर्स एण्ड स्टेशनर्स, १/९३४६-बी, वेस्ट रोहतास नगर, दिल्ली-११००३२ द्वारा मुद्रित।

यह मंगल श्रीगुरु अर्जुनदेव जी ने आदि ग्रन्थ लिखने से पहले अपने करकमलों से लिखा

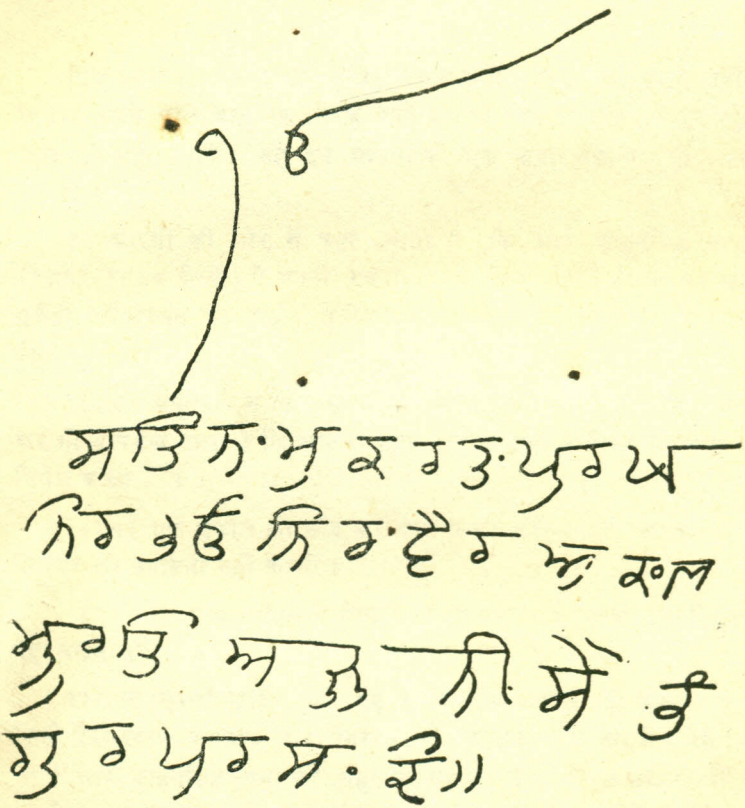

(संपादक, खालसा समाचार, अमृतसर, से धन्यवाद सहित प्राप्त हुआ)

शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी श्री अमृतसर की ओर से सन् १९६७ में प्रकाशित 'निशान और हुक्मनामे' नामक पुस्तक से लिया गया है।

प्रस्तावना

प्रिय सज्जनो ! हमारे दसों गुरुवर वैष्णव-धर्मी (हिन्दू) थे, परन्तु नवीन विचार रखने वाले आधुनिक सिक्ख अपने आपको वैष्णव कहना तो दूर रहा, हिन्दू ही नहीं मानते। यह इन भाइयों की एक बड़ी अज्ञानता ही मानी जायेगी।

इन भाइयों की ओर से कहा जाता है कि भाई काहनसिंह नाभा (१८६१-१९३८ ईसवी) ने अपनी रचना, "हम हिन्दू नहीं" (सत्य प्रकाशक एजैंसी, श्री गुरुमत प्रेस लाहौर, तृतीय संस्करण, १९०७ ईसवी) में लिखा है कि

"(१५) अमृतपान करवाते समय जो उपदेश किया जाता है, उसे विचार कर भी आप देख सकते हैं कि खालसा हिन्दू इत्यादि धर्मों से भिन्न है। यथा—निषेध वाक्य...।

(२२) एक अकाल को छोड़ कर अन्य किसी देवी-देवता, अवतार और पैग़म्बर की उपासना नहीं करनी।

(२३) गुरु ग्रन्थ साहिब के सिवाय किसी अन्य धर्म-पुस्तक पर निश्चय नहीं रखना।"

उपरोक्त २२वाँ उपदेश (!) यह है कि एक अकाल को छोड़कर अन्य किसी देवी-देवता, अवतार और पैग़म्बर की उपासना नहीं करनी। श्रीमान् जी ! भाई काहनसिंह नाभा को यहाँ पर यह बताने की चेष्टा करनी चाहिये थी कि खालसा पन्थ दसों गुरुओं को अवतार, पैग़म्बर अथवा कोई देवी-देवता मानता है अथवा अकाल पुरख ही मानता है? यदि अकाल पुरख ही मानता है तो कैसे ? तो फिर अन्य लोग किसी देवी-देवता, अवतार इत्यादि को परमात्मा का रूप क्यों नहीं मान सकते ? यदि खालसा पन्थ दसों गुरुओं को देवता, अवतार अथवा पैग़म्बर मानता है तो दसों गुरुओं की उपासना भी साथ में क्यों करता है ?

इससे आगे २३वाँ उपदेश है कि गुरु ग्रन्थ साहिब के बिना किसी अन्य धर्म-पुस्तक पर निश्चय नहीं रखना। यदि इस २३वें उपदेश को व्यवहार में लाया जाय तो फिर आप **खालसा पन्थ** की रचना का प्रमाण भी **श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी** की वाणी द्वारा ही क्यों नहीं देते, जबकि आपको **गुरु ग्रन्थ साहिब जी** के सिवाय किसी अन्य धर्मपुस्तक पर निश्चय ही नहीं रखना। इस निश्चय के अनुसार तो अन्य धर्म-ग्रन्थों में सिद्ध किये गये सिद्धान्तों पर **खालसा पन्थ** कैसे निश्चय रख सकता है? और यह कैसे माना जाए कि इन ग्रन्थों के सिद्धान्त यथार्थ हैं?

यदि आप यह कहें कि आप **खालसा पन्थ** की रचना का स्पष्टीकरण श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में से ही करते हैं, तो फिर ऐसा कैसे करते हैं, जबकि गुरु ग्रन्थ साहिब में **पांच ककार** धारण करने और अमृतपान (**अमृत छकने**) का उल्लेख ही नहीं है? फिर **खालसा पन्थ** की रचना को गुरु ग्रन्थ साहिब के आधार पर कैसे सिद्ध किया जा सकता है?

यदि यह २३वां उपदेश ही यथार्थ है, तो फिर आप भाई गुरदासजी की वाणी और रहतनामों इत्यादि अन्य पुस्तकों के प्रमाणों का प्रयोग क्यों करते हैं, जबकि ये सभी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी को छोड़कर अन्य धर्म-ग्रन्थ हैं जिनपर हमें निश्चय नहीं करना चाहिये।

सारांश यह निकलता है कि भाई काहनसिंह नाभा का पीसा-छाना सारा ही व्यर्थ चला गया, क्योंकि जब अन्य धर्म-पुस्तकों पर आपका निश्चय ही नहीं, तो फिर अन्य ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा सिद्ध किये सिद्धान्तों पर कोई सिक्ख कैसे निश्चय रख सकता है?

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की वाणी पर जिन गुरुसिक्खों का परिपूर्ण विश्वास और निश्चय है, उन श्रद्धालु गुरुसिक्खों के समक्ष **श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी** के मंगलाचरण पर विस्तारपूर्वक विचार करके हम दिखलाते हैं कि हमारे दसों गुरुवर किस प्रकार वैष्णव-धर्मी थे।

१ ओ सति, गुरप्रसादि

श्री आदि ग्रन्थ के मंगल पर विचार

१ ओ सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥

यह **गुरवाक** श्री जपुजी और श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी का मंगलाचरण है। यह **सिक्खमत** का मूल है, इसलिये इसे मूलमन्त्र भी माना गया है। श्री जपुजी और श्री गुरु ग्रन्थ साहिव एक प्रकार से इस मंगलाचरण (मूलमन्त्र) की व्याख्या हैं। इस **गुरवाक** की सबसे बड़ी महानता यह है कि आदि ग्रन्थ के प्रारम्भ में इसे मंगल रूप में वर्णित किया गया है और सब बाणियों में शिरोमणि, श्री जपुजी, के आरम्भ में भी इस **गुरवाक** को मंगलस्वरूप माना गया है। **सिक्ख पन्थ** में इस मंगलाचरण को मूलमन्त्र की उपाधि प्राप्त है। इतना ही नहीं, सिक्ख समुदाय के नित्यकर्म (नितनेम) में सबसे पहले इसका उच्चारण किया जाता है। यह वह **गुरवाक** है जिसका उच्चारण अमृत तैयार करते समय सबसे पहले किया जाता है। अमृतपान के अभिलाषियों को पाँच प्यारों की ओर से मूलतन्त्र को दृढ़ करवाया जाता है। सिक्ख समुदाय के मूलभूत नियमों में सबसे पहले इसी गुरवाक का ही उच्चारण किया जाता है।

इन गुरवाक-रूप मंगलाचरण का इतना मान-सत्कार होने पर भी सिक्ख-पन्थ के **गिआनिओं** को अभी तक इस बात का ज्ञान नहीं है कि यह कौनसे गुरुजी की रचना है, इस गुरवाक के **१ ओ** पद का शुद्ध उच्चारण कैसे किया जाये, और गुरमत सिद्धांत के अनुसार इसका अर्थ क्या है? इन सब शंकाओं का समाधान आगे किया जायेगा।

प्रश्न — यह मंगलाचरण कौन से गुरुवर की रचना है ?

उत्तर— सिक्ख विद्वानों द्वारा प्रायः यह कहा जाता है कि 'श्री गुरु नानक देव जी महाराज स्नान करते समय वईं नदी में डुबकी मार कर **सचखण्ड** चले गए और गुरसिक्खी की सिद्धान्त-रीति के निरूपणार्थ **अकाल पुरख** से— १ ओ सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि— यह मन्त्र लेकर तीसरे दिन **सन्तघाट** नामक स्थान पर, जो बेर साहिब से डेढ़ मील की दूरी पर सुल्तानपुर में है, प्रकट होकर वेई नदी से बाहर निकले' (अमीर भण्डार ग्रन्थ में से)

वास्तव में इस मंगलाचरण को परमात्मा द्वारा श्री गुरु नानक देव जी को मूलमन्त्र के रूप में प्रदत्त मान लेना एक बड़ी भूल है, क्योंकि इस गुरवाक-रूपी मंगल के रचयिता वस्तुतः पंचम गुरु श्री अर्जुन देव जी हैं जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है।

चतुर्थ गुरु श्री रामदास जी ज्योति-ज्योत-समाने से पूर्व इस **गुरवाक** की रचना ही नहीं हुई थी। और न ही इससे पूर्व इसकी रचना का उल्लेख किसी प्राचीन इतिहास-ग्रन्थ में उपलब्ध होता है। श्री गुरु अर्जुन देव जी ने ही पोथी साहिब (श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी) के सम्पादन के समय बाबा श्री मोहन जी की पोथियों का आधार लेकर इस मंगलाचरण (मूलमन्त्र) की रचना की थी। इस मंगलरूप **गुरवाक** का १६६१ विक्रमी (श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के सम्पादन काल) से पूर्व क्या स्वरूप था, यह पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत है।

१. ज्ञानी ज्ञानसिंह कृत तवारीख गुरु खालसा (कैकस्टन प्रेस, अनारकली, लाहौर, पत्थरछापा द्वितीय संसकरण, गुरु नानक सम्वत् ४२८, १८९७ ईसवी) भाग १, नम्बर २ के पृष्ठ ४७ पर **श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी** की रचना के प्रसंग में श्री बाबा मोहन जी की पोथियों पर की गयी टिप्पणी में लिखा है कि बाबा मोहन की पोथियों में पाठ यहाँ से प्रारम्भ होता है : 'बाबा नानक बेदी पातशाह दीन दुनी दा टिका—१ ओ सतिगुरू प्रसाद सच नाम करतार निरभउ निरीकार अकाल मूरति अजूनी संभउ गुरु पूरे के प्रसाद।'

२. प्रिंसिपल तेजासिंह एम० ए० अपनी रचना **टीका श्री जपु जी साहिब** (तृतीय संस्करण, पृष्ठ ३४), की पादटिप्पणी में लिखते हैं : 'श्री बाबा मोहन जी वाली सैंची (संहिता) विच वाणी दा आरम्भ इउं हुन्दा है—बाबा नानक बेदी पातशाह दीन दुनी दा टिका—१ ओ सति गुरू प्रसादि सचु नामु

करतारु, निरभउ निरंकारु अकाल मूरति अजूनी संभउ गुरू पूरे के परसादि ।'

३. श्री सोढी हजारासिंह बी० ए० अपनी **जपु वीचार** पुस्तक के पृष्ठ ३ की पादटिप्पणी में लिखते हैं कि '१ ओ सतिगुरू प्रसद सचु नमु करतरु अकल मूरति अजूनी संभउ गुरू पूर के परसदु रगु रमकली···। (इह गोइन्दवाल वाली पोथी दा उतारा है । अक्खर गुरमुखी-हिन्दगी रले-मिले हन)'

४. शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर, के तत्वावधान में प्रकाशित **स्री गुरु बाणी प्रकाश**, प्रथम खण्ड के पृष्ठ १० पर सोढी तेजासिंह श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की रचना के प्रसंग में बाबा मोहन जी वाली पहली पोथी का वर्णन करते हुए लिखते हैं : 'पोथी दा आरम्भ इस तरहां हुन्दा हे—बाबा नानक बेदी पातशाह दीन दूनी दा टिका—१ ओ सतिगुरु प्रसाद सच नाम करतार निरभउ निरीकार अकालमूरत अजूनी संभउ गुरू पूरे के परसाद—(इह पहली पोथी दे आप दरशन करके लेखक ने इह सब कुछ लिखिआ है)'

५. भाई काहनसिंह नाभा कृत **महानकोश** (भाषा विभाग, पटियाला, चतुर्थ संस्करण, १९८१ ईसवी) पृष्ठ ११७२, पर बाबा मोहन की पोथियों का मंगलाचरण इस प्रकार लिखा बताया गया है : '१ ओ सतिगुरू परसाद सचु नामु करतारु अकालमूरति अजूनी संभउ गुरू पूरे के परसाद ।'

६. खालसा ट्रैक्ट सोसायटी, अमृतसर, द्वारा प्रकाशित **निरगुणआरा** ट्रैक्ट (जुलाई का मासिक पत्र, १९५९ ईसवी) के पृष्ट १० पर मंगलाचरण की व्याख्या करते हुए लिखा हैं :

"(३) मूलमन्त्र, मंगल मूलमन्त्र का जो स्वरूप पवित्र बाणी में विद्यमान है, इसे यह अन्तिम स्वरूपता पंचम पातशाही ने दी प्रतीत होती है । पहले कैसी स्वरूपता थी ? गोइन्दवाल साहिब वाली पोथियों मे कुछ इस प्रकार का नमूना मिलता है—

'१ ओ सतिगुरू सचु नामु करतारु निरभउ
निरीकार, अकाल मूरति अजूनी संभउ ।'

'पर पंचम पातशाह जी ने इसका स्वरूप, जो अन्तिम स्वरूप कहा जा सकता है, इस प्रकार लिखा है—

"१ ओ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैर,
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥' "

लेखक की ओर से—विद्वानों (गिआनियों) के उपरोक्त लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी में जो मंगलाचरण १ ओ से लेकर गुर प्रसादि तक प्राप्त होता है, वह पंचम श्री गुरु अर्जुनदेव जी की रचना है। यदि इसमें किसी का यह हठ ही हो कि यह मंगलस्वरूप मूलमन्त्र परमात्मा द्वारा श्री गुरु नानक देव जी को गुरुमन्त्र के रूप में मिला था, तो उस हठधर्मी को सम्वत् १६६१ विक्रमी से पूर्ववर्ती किसी हस्तलिखित ग्रन्थ का प्रमाण प्रस्तुत करके यह सिद्ध करना होगा कि यह मंगलाचरण किस प्रकार परमात्मा की ओर से गुरु नानक देव जी को प्राप्त हुआ था।

यदि सिक्ख सम्प्रदाय इस मंगलाचरण को पंचम श्री गुरु अर्जुन देव जी की रचना मान ले तो फिर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि गुरु नानक देव जी को परमात्मा की ओर से कौनसा गुरुमन्त्र मिला था ?

———

प्रश्न — इस मंगलाचरण के १ ओ शब्द का शुद्ध उच्चारण कैसे किया जाय ?

उत्तर— इस मंगलाचरण के १ ओ पद पर सिक्ख समुदाय के किसी गिआनी ने अभी तक यह निर्णय नहीं किया कि उपरोक्त मंगलाचरण के १ ओ शब्द का गुरमत-सिद्धान्त के अनुसार शुद्ध उच्चारण किस प्रकार किया जाए, क्योंकि इस शब्द के उच्चारण के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद है। यथा—१. इक ओअंकार। २. इकि ओअंकार। ३. इक ओअमकार। ४. इकोअंगकार। ५. एकंकार ओअंकार। ६. एकंकार। ७. एकमकार। ८. एकोंकार ९. एकोअंकार। १०. १ ओअंकार। ११. १ ओअं। १२. १ ओम। १३. १ ओ

जिस आदि ग्रन्थ के १ ओ शब्द के उच्चारण में १३ भेद माने जाएं, ऐसे आदि ग्रन्थ का शुद्ध पाठ करने का दावा क्या कोई गिआनी सज्जन कर सकता है ? कदापि नहीं।

इसलिये यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम प्रत्येक सिक्ख विद्वान को यह जान लेना चाहिए है कि १ ओ शब्द के उपरोक्त १३ भेदों में से गुरमत सिद्धान्त के अनुसार शुद्ध उच्चारण कौनसा है, और कौनसा नहीं।

गुरुवाणी में १ ओ शब्द का उच्चारण विविध रूपों में उपलब्ध है। यथा :

ओअंकारि ब्रहमा उतपति ।। ओअंकारु कीआ जिनि चिति ।।
ओअंकारि सैल जुग भए ।। ओअंकारि बेद निरमए ।।१।।
—दखणी ओअंकारु रामकली महला १, पृष्ठ ९२९-३०

ओअंकारि सभ स्रिसटि उपाई ।। सभु खेलु तमासा तेरी वडिआई ।।
आपे वेक करे सभि साचा आपे भंनि घड़ाइदा ।।२।।१६।।४।।१८।।
—मारू सोलहे महला ३, पृष्ठ १०६१

ओअंकार एको रवि रहिआ सभु एकस माहि समावै गो ।।
एको रूपु एको बहु रंगी सभु एकतु बचनि चलावै गो ।।४।।८।।४।।
—कानड़ा महला ४, पृष्ट १३१०

इसी प्रकार गुरुवाणी द्वारा १ ओअं शब्द का उच्चारण भी सिद्ध हो जाता है। यथा :

१. ओअं साध सतिगुर नमसकारं ।। आदि मधि अंति निरंकारं ।।१।।
—गउड़ी बावन अखरी महला ५, पृष्ठ २५०

२. ओअं गुरमुखि कीओ अकारा ।। एकहि सूति परोवनहारा ।।२।।
—गउड़ी बावन अखरी महला ५, पृष्ठ २५०

३. ओअं प्रिअ प्रीति चीति पहिलरीआ ।।
जो तउ बचनु दीओ मेरे सतिगुर तउ मै साज सागरीआ ।।१।।
रहाउ।।१।।२२।।४५।।
—सारंग महला ५, पृष्ठ १२१३

गुरुवाणी में से १ ओ शब्द का उच्चारण भी सिद्ध हो सकता है। यथा :

१. ओ नम अखर सुणहु बीचारू ।।
२. ओ नम अखर त्रिभवण सारु ।।१।।
—दखणी ओअंकारु रामकली महला १, पृष्ठ ९३०

३. ओं नमो भगवंत गुसाई।
खालकु रवि रहिआ सरब ठाई ॥१॥रहाउ॥५॥३४॥४५॥
—रामकली महला ५, पृष्ठ ८९७

और तो और, गुरुवाणी में से **एकंकार** भी सिद्ध हो सकता है। यथा :

१. एकम एकंकारु निराला ॥
अमर अजोनी जाति न जाला ॥१॥
—बिलावलु महला १, पृष्ठ ८३८

२. हरि मेलहु सतिगुरु दइआ करि मनि वसै एकंकारु ॥
जिन गुरमुखि सुणि हरि मंनिआ जन नानक तिन जैकारु ॥२॥
—कानड़े की वार महला ४, पृष्ठ १३१४

३. बेद पुराण सासत्र बीचारं ॥ एकंकार नाम उर धारं ॥
कुलह समूह सगल उधारं ॥ बडभागी नानक को तारं ॥२०॥२४॥
—गाथा महला ५, पृष्ठ १३६१

१. आधुनिक विचारकों में से एक, प्रोफेसर साहिबसिंह, अपने ग्रन्थ **श्री गुरु ग्रन्थ साहिब दरपण**, पोथी पहली, पृष्ठ ४४ पर १ ओ शब्द के उच्चारण के सम्बन्ध में लिखते हैं :

"१ ओ उच्चारण करते समय इसके तीन भाग किये जाते हैं। १, ओ और ◌ । इसका पाठ है—इक ओअंकार। तीन भाग भिन्न-भिन्न उच्चारण करते समय इस प्रकार बनते हैं—१=इक्क, ओ=ओअ, ◌=कार।

"ओं संस्कृत का शब्द है। अमरकोश के अनुसार इसके तीन अर्थ हैं :

क. वेद आदि धर्मपुस्तकों के आरम्भ और अन्त में अरदास (प्रार्थना) अथवा किसी पवित्र धर्मकार्य के प्रारम्भ में अक्षर ओं पवित्र अक्षर मानकर प्रयोग किया जाता है।

ख. किसी आदेश अथवा प्रश्न इत्यादि के उत्तर में आदर और सत्कार के साथ जी हाँ कहना। सो ओं का अर्थ है जी हाँ।

ग. ओं=ब्रह्म।"

२. श्रीमान् सन्त गुरबचन सिंह जी खालसा (भिण्डरांवाले) ने अपनी रचना **श्री जपुजी साहिब** में १ ओ के उच्चारण के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है :

"३—अनुभव (दलील या सोच):—

१ ओ—इस पद का छेद करें तो तीन भाग बनते हैं:—

(१) इक + (ओ) ओअं + (ं) कार।

"ओं संस्कृत का शब्द है। उच्चारण ओअं है। आगे जो ं लकीर है, इसे पंजाबी में **कार** कहते हैं। हजूर ने भी लकीर को **कार** कहा है। यथा:—

देकै चउका कढी कार ॥ (अंक ४७२)
रूपै कीआ कारा बहुतु बिसथार ॥ (बसंत महला १, अंक ११६९)
कारी कढी किआ थीऐ जां चारे बैठीआं नालि ॥
(सलोक महला १, अंक ९१)

"इस लिये (१) इक + (ओ) ओअं + (ं) कार, सारा उच्चारण इक **ओअंकार** सही हुआ।

"सारी **धुर की बाणी, दसम बाणी** में और भाई गुरदास की **वारां** इत्यादि गुरुघर के किसी भी ग्रन्थ में ं के बिना केवल (ओ) नहीं लिखा।" (श्री गुरु ग्रन्थ साहिब सटीक, टकसाल श्री दमदमा साहिब, पहली पोथी श्रीजपुजी मूलमन्त्र प्रसंग, पृष्ठ २७-२८)

लेखक की और से—उपरोक्त दोनों लेखों के विद्वान लेखको ने १ ओ शब्द के तीन भाग माने हैं। जिसमें **ओ** पद के साथ अपनी ओर से **अं** पद जोड़कर ओअं शब्द बना लिया है। ऐसा क्यों ? जब गुरुओं ने केवल **ओ** पद प्रयोग किया है तो फिर **अं** पद किस नियम से जोड़ा गया है ?

इस प्रकार तो कोई भी सिक्ख ओ पद के साथ ं (**कार**) पद के स्थान पर '**म**' शब्द जोड़कर **ओम** शब्द बना लेगा। क्या कोई सिक्ख ऐसा मान लेने

को तैयार है ? कदापि नही । फिर ओ ͡ पद के साथ अं पद जोड़ना कोई कैसे मान सकता है ? इसलिये हमें गुरुवाणी के शब्दों को बदलने का कोई अधिकार नहीं।

सारांश यह निकलता है कि इस १ ओ ͡ शब्द के तीन भाग इस प्रकार करने चाहियेः—१ ओ ͡ (कार)। भाव यह कि **एक ओकार** उच्चारण करना गुरमत के अनुसार है । यह **उकार** पद ओम् या ओंकार की तीन मात्राओं में से एक मात्रा है । यथाः—अकार, उकार और मकार । अकार ब्रह्मा, **उकार** विष्णु, और **मकार** शिव । परन्तु पंचम श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज ने इन तीनों मात्राओं में से केवल सत्त्वगुणी विष्णु देव जी की मात्रा **ओकार** को ही स्वीकार किया है । इसलिये इस मंगलाचरण का शुद्ध उच्चारण इस प्रकार करना चाहिये ।

> १ ओकार सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
> अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि ॥

———

१ ओ ͡ सतिगुर प्रसादि

आदि ग्रन्थ में उपरोक्त मंगल ५२२ बार आया है । इसका पदच्छेद सिक्ख विद्वानों ने इस प्रकार किया है—१ ओ ͡ सतिगुर प्रसादि । परन्तु यह पदच्छेद गुरमत-सिद्धान्त के विरुद्ध है । वास्तव में इस मंगल का पदच्छेद इस प्रकार करना चाहिये—१ ओ ͡ सति, गुरप्रसादि ।

इसका स्पष्टीकरण किया जाता है । **श्रीगुरु ग्रन्थ साहिब जी** में चार प्रकार के मंगलाचरण प्रयुक्त हैं । यथा :

> १. १ ओ ͡ सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
> अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि ॥

यह मंगल सम्पूर्ण रूप में ३३ बार आया है ।

२. १ ओ सतिनामु करता पुरखु·····गुरप्रसादि ॥
यह मंगल कुल ९ बार आया है।

३. १ ओ सति नामु गुरप्रसादि।

यह मंगल कुल २ बार पृष्ठ ८१ तथा पृष्ठ ५४४ पर आया है।

४. १ ओ सति, गुरप्रसादि।

यह मंगल कुल ५२२ बार प्रयुक्त है।

इस संक्षिप्त मगल में **सति** पद के स्थान पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यहां इसका सम्बन्ध **१ ओ** के साथ है, गुरप्रसादि के साथ नहीं। इसका अन्वय करने पर ऐसा लिखा जायेगा:—१ ओ सति, गुरप्रसादि। यह बात ऊपर १, २, ३, में सम्पूर्ण और संक्षिप्त दोनों प्रकार के मंगलों से स्पष्ट सिद्ध होती है। इनमें **गुरप्रसादि** अन्त में आया है। **गुरप्रसादि** से पहले **सति** पद नहीं है। संख्या १ में **सैभं** पद, संख्या २ में **पुरखु**, संख्या ३ में **नामु** पद हैं।

उपरोक्त संक्षिप्त विचार से हमारा उद्देश्य पाठकों के ध्यान में यह बात लाना है कि मंगल में **सति** पद का सम्बन्ध **१ ओ** के साथ स्पष्टत: स्थापित होता है, **गुरप्रसादि** के साथ नहीं। इस मंगल के **सति** पद को **गुर** पद के साथ जोड़ने से गिआनियों की अज्ञानता ही सिद्ध होती है।

श्री जपुजी की पहली पउड़ी का निर्णय

अब यहाँ पर भाई काहनसिंह नाभा की विद्वत्ता का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। भाई काहनसिंह नाभा कृत **हम हिन्दू नहीं** पुस्तक के चौथे, **देवी देवता**, प्रकरण में **१ ओ** से लेकर **नानक होसी भी सचु** तक को जपुजी साहिब की पहली पउड़ी माना है।

वस्तुतः ऐसा है नहीं। भाई जी लिखते हैं :

"सिक्ख धर्म (पन्थ) में केवल वाहगुरू ही ईष्ट है और उस की उपासना का उपदेश है —

१ ओ ◠ सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैंभं गुरप्रसादि ॥जपु॥
आदि सचु जुगादि सचु ॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥१॥
(जपुजी)"

—हम हिन्दू नहीं, पृष्ठ १२१

लेखक की ओर से—१ ओ ◠ से लेकर **गुरप्रसादि** तक, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब तथा जपुजी साहिब, दोनो का मंगलाचरण है। और **जपु** मंगलाचरण नहीं, वरन् एक वाणी का नाम है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में रागों का आरम्भ होने से पूर्व यह मंगल बार-बार दोहराया गया है तथा मंगल की समाप्ति प्रत्येक बार **गुरप्रसादि** पर हुई है। **जपुजी** नामक वाणी का आरम्भ होने से पहले भी हमें यह मंगल मिलता है। **जपु** शब्द के दोनों ओर लगे विराम (॥ जपु ॥) स्पष्ट सूचना दे रहे हैं कि यह एक स्वतन्त्र शब्द है और शीर्षक के रूप में एक वाणी का नाम है, उसी प्रकार जिस प्रकार बारहमाहा, बावन अखरी, सुखमनी, आनन्द और सदु इत्यादि वाणियों के नाम हैं। और शीर्षक के उपरान्त आने वाला **आदि सचु** सलोक है जो **जपु** शब्द से अलग है।

इसका प्रमाण यह है कि श्रीगुरु अर्जुन देव जी महाराज ने यही सलोक सुखमनी साहिब की १७वीं असटपदी के आरम्भ में स्पष्ट रूप से सलोक कह कर लिखा है। और जिस प्रकार जपुजी के आरम्भ में इस सलोक का अंक १ दिया है, उसी प्रकार सुखमनी साहब के आरम्भ में भी इस का अंक १ ही दिया है। फिर जपुजी में इस सलोक के उपरान्त आने वाली पौड़ी—**सोचै सोचि न होवई** से लेकर **नानक लिखिआ नालि** तक—का अक भी १ दिया है। यह दूसरा अंक १ ही ३८ पौड़ियों की गिनती में आता है, सलोक के अन्त में दिया अंक १ नहीं। अतएव यह सलोक मूलमन्त्र का अंग नहीं माना जा सकता, जैसा कि भाई काहनसिंह नाभा ने माना है।

इसके उपरान्त **पवण गुरू** वाले सलोक में पुन. अंक १ दिया है। इसका

स्पष्ट अभिप्राय यह हुआ कि **जपु** में ३८ पउड़ियां हैं और उसके आदि तथा अन्त में एक-एक **सलोक** है। अन्तिम सलोक के आरम्भ में **सलोक** पद लिखा है परन्तु पहले सलोक के आरम्भ में नहीं लिखा। यह **सुखमनी** में बता दिया है कि वहां उसको **सलोक** कहा है। सो दो सलोक और ३८ पउड़ियां हुईं।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि १ ओ से लेकर **गुरप्रसादि** तक का मंगल **जपजी** से सर्वथा पृथक् है, और **श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी** में यह मंगल हमें पृथक् रूप में अनेक स्थानों पर मिलता है।

परन्तु भाई काहनसिंह नाभा ने उपरोक्त गुरवाक रूप मंगल को **नानक होसी भी** सचु तक लिखा है और शेष ५६५ मंगलों को अधूरा सिद्ध करने का प्रयास किया है, जोकि गुरुवाक सिद्धान्त के विरुद्ध है। यह भाई काहनसिंह नाभा की अनुपम और **मनमानी** खोज का उदाहरण है। पाठकगण इससे अनुमान लगा सकते हैं कि भाई काहनसिंह नाभा गुरमत सिद्धान्त के अनुसार कितना लिखा करते थे।

विष्णु मंगल

१ ओ सति नामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि ॥

सतिगुरू बिना होर कची है बाणी ॥
बाणी त कची सतिगुरू बाझहु होर कची बाणी ॥
कहदे कचे सुणदे कचे कंची आखि वखाणी ॥२४॥

—रामकली महला ३, पृष्ठ ९२०

प्रिय सज्जनो ! जो लोग सद्गुरु की वाणी की अवहेलना करके कुछ भी कहते, सुनते, लिखते और पढ़ते हैं वे सब कच्चे हैं। इसलिए लेखक को उपरोक्त मंगलाचरण का जो भी अर्थ करना है वह गुरुवाणी के प्रमाणों द्वारा ही करना है।

अब उपरोक्त मंगलाचरण के एक-एक पद को क्रम से लेकर गुरु प्रमाणों द्वारा दिखाया जाता है कि यह मंगल भगवान श्री विष्णु देव जी महाराज से किस प्रकार सम्बद्ध है।

१=एक—(क) साहिबु मेरा एको है ॥ एको है भाई एको है ॥१॥रहाउ॥

—आसा महला १, पृष्ठ ३५०

(ख) एकम एकंकारु निराला ॥ अमरु अजोनी जाति न जाला ॥१॥
—बिलावलु महला १, पृष्ठ ८२८

(ग) इसु एके का जाणै भेउ ॥ आपे करता आपे देउ ॥८॥
—रामकली महला १, पृष्ठ ९३०

(घ) एको एकु कहै सभु कोई हउमै गरबु विआपै ॥
अंतरि बाहरि एकु पछाणै इउ घरु महलु सिञापै ॥५॥
—रामकली महला १, पृष्ठ ९३०

(ङ) एको एकु सभु आखि वखाणै ॥
हुकमु बूझै तां एको जाणै ॥३॥
—बसन्तु महला ३, पृष्ठ ११७९

प्रश्न—वह एक कौन है ?

उत्तर—वह एक है भगवान विष्णु, जिसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित गुरुवाणी के प्रमाणों द्वारा हो जाता है। यथा:—

१. दैत पुतु करम धरम किछु संजम न पड़ै दूजा भाउ न जाणै ॥
सतिगुरु भेटिऐ निरमलु होआ अनदिनु नामु वखाणै ॥
एको पड़ै एको नाउ बूझै दूजा अवरु न जाणै ॥४॥
—सिरीरागु महला ३, पृष्ठ ६७

२. सनक सनंदन नारद मुनि सेवहि अनदिनु जपत रहहि बनवारी ॥
सरणागति प्रहलाद जन आए तिन की पैज सवारी ॥२॥
अलख निरंजन एको वरतै एका जोति मुरारी ॥
सभि जाचिक तु एको दाता मागहि हाथ पसारी ॥३॥
—गूजरी महला ४, पृष्ठ ५०७

३. स्री रामचंद जिसु रूपु न रेखिआ ॥
बनवाली चक्रपाणि दरसि अनूपिआ ॥
सहस नेत्र मूरति है सहसा इकु दाता सभ है मंगा ॥४॥
—मारू सोलहे महला ५, पृष्ठ १०८२

४. सरब सुखा का एकु हरि सुआमी सो गुरि नामु दइओ ॥
संत प्रहलाद की पैज जिनि राखी हरनाखसु नख बिदरओ ॥२॥
—बिलावलु कबीर जीउ की, पृष्ठ ८५६

५. मो कउ कहा सतावहु बार बार ।।
प्रभि जल थल गिरि कीए पहार ।।
इकु राम न छोडउ गुरहि गारि ।।
मोकउ घालि जारि भावै मारि डारि ।।३।।

—बसंतु वाणी कबीर जी, पृष्ठ ११९४

इन उपरोक्त गुरु-प्रमाणों में प्रहलाद के प्रकरणानुसार भगवान श्री विष्णु-देव को ही एक कह कर वर्णित किया गया है। इसलिये उपरोक्त मंगलाचरण में एक शब्द का भावार्थ भगवान श्री विष्णुदेव ही है।

ओ=ओंकार—ओअंकारि ब्रहमा उतपति ।। ओअंकारु कीआ जिनि चिति।।
ओअंकारि सैल जुग भए ।। ओअंकारि वेद निरमए ।।१।।
—रामकली महला १ दखिणी ओअंकारु, पृष्ठ ९२९-३०

प्रश्न—ओंकार से ब्रह्माजी की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ?

उत्तर—ओंकार स्वरूप पारब्रह्म श्री विष्णुदेव के नाभिकमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। देखिये गुरुवाणी के निम्नलिखित प्रमाण :—

१. नाभि कमल ते ब्रहमा उपजे बेद पड़हि मुखि कंठि सवारि ।।
ता को अंतु न जाई लखणा आवत जावत रहै गुबारि ।।१।।

—गूजरी महला १, पृष्ठ ४८९

२. प्रथमे ब्रहमा कालै घरि आइआ ।।
ब्रहम कमलु पइआलि न पाइआ ।।
आगिआ नही लीनी भरमि भुलाइया ।।१।।

—गउड़ी महला १, पृष्ठ २२७

३. नालि कुटंबु साथि वरदाता ब्रहमा भालण स्रिसटि गइआ ।।
आगै अंतु न पाइओ ताका कंसु छेदि किआ वड़ा भइआ ।।३।।

—आसा महला १, पृष्ठ ३५०

४. नाभि वसत ब्रहमै अंतु न जाणिआ ।।
गुरुमुखि नानक नामु पछाणिआ ।।३।।

—सारंग की वार महला ४, पृष्ठ १२३७

५. तू सचा सचिआरु जिनि सचु वरताइआ ॥
बैठा ताड़ी लाइ कवलु छपाइआ ।
ब्रहमै वड़ा कहाइ अंतु न पाइआ ॥२॥
—वार मलार की महला १, पृष्ठ १२७६

गुरुवाणी के इन उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब ब्रह्मा भी उस नाभिकमल वाले ओंकार-स्वरूप भगवान विष्णु का अन्त न पा सका, तो फिर आजकल के नवीन विचार रखने वाले ज्ञानीजन उसका अन्त कैसे पा सकते हैं ?

सतिनामु—सति शब्द का अर्थ अविनाशी पद का सूचक है। भगवान को गुरुवाणी में अनेक स्थलों पर अविनाशी अर्थात् नाशरहित कहा गया है। यथा :—

१. **अचुत** पारब्रह्म परमेसुर अंतरजामी ॥ मधुसूदन दामोदर सुआमी ॥
रिखीकेस गोवरधन धारी मुरली मनोहर हरि रंगा ॥१॥
—मारु सोलहे महला ५, पृष्ठ १०८२

२. मोहन माधव क्रिस्न मुरारे ॥ जगदीसुर हरि जीउ असुर संघारे ॥
जगजीवन **अबिनासी** ठाकुर घट घट वासी है संगा ॥२॥
—मारु सोलहे महला ५, पृष्ठ १०८२

३. अमोघ दरसन आजूनी संभउ ॥
अकाल मूरति जिसु कदे नाही खउ ॥
अबिनासी अबिगत अगोचर सभु किछु तुझ ही है लगा ॥७॥
—मारु सोलहे महला ५, पृष्ठ १०८२

४. किरतम नाम कथे तेरे जिहबा ॥ **सति नामु** तेरा परा पूरबला ॥
कहु नानक भगत पए सरणाई देहु दरसु मनि रंगु लगा ॥२०॥
—मारु सोलहे महला ५, पृष्ठ १०८३

गुरुवाणी के इन चारों प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि श्रीगुरु अर्जुनदेव जी भगवान श्री विष्णु को अमर मानते हैं। इसीलिये उपरोक्त विष्णु-स्तुति में उन्होंने भगवान विष्णु को अच्युत, अविनाशी तथा सत्य कहकर वर्णित किया है। उपरोक्त प्रमाणों में संख्या ४ के अन्तर्गत विद्यमान सोलहे का अर्थ यहां प्रस्तुत है।

भावार्थ—हे अच्युत, अविनाशी एवं सत्य-स्वरूप विष्णो ! आपकी प्रेमा भक्ति करने वाले अनेकों भक्तों ने आपके गुणगान किए, आपके कौतुकों को

देख-सुन कर असंख्य **नामों** का उच्चारण किया है, जिन नामों में से प्रमुख नामों द्वारा मैंने भी अपनी जिह्वा द्वारा आपका गुणगान किया है। मैं आपके नामों का कहां तक कथन करूँ ? आपका नाम तो प्रारम्भ से ही **सत्य** चला आ रहा है। हे हरि ! भक्त-गण तेरी शरण में आ गये हैं। मेरा मन भी तेरे रंग में रँग गया है। अत: हे प्रभो ! मुझे (अपने सगुण स्वरूप का) दर्शन देकर कृतार्थ कर।

प्रिय सज्जनो ! श्री विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र में भगवान श्रीविष्णु को **चार** बार **सत्य** पद से वर्णित किया गया है।[1] इसलिये प्रकरणानुसार उक्त मारु सोलहे में प्रयुक्त **सति**=सत्य शब्द भगवान विष्णु से ही सम्बद्ध है।

करता—भगता का अंगीकारु करदा आइआ ।।
करतै अपणा रूपु दिखाइआ ।।१३।।१।।२।।
—भैरउ महला ३, पृष्ठ ११५५

धरणीधर ईस नरसिंघ नाराइण ।। दाड़ा अग्रे प्रिथमि धराइण ।।
बावन रूपु कीआ तुधु करते सभ ही सेती है चंगा ।।३।।
—मारु सोलहे महला ५, पृष्ठ १०८२

यहां नरसिंह, वराह एवं वामन के रूप में भगवान विष्णु को ही **करता** कहा गया है।

पुरखु—ओइ परम **पुरखु** देवाधि देव ।। भगति हेति नरसिंघ भेव ।।
कहि कबीर को लखै न पार ।। प्रहलाद उधारे अनिक बार।।५।।४।।
—बसंतु वाणी कबीर जी, पृष्ठ ११९४

निरभउ—पुत्र प्रहिलाद सिउ कहिआ माइ ।।
परविरति न पड़हु रही समझाइ ।।
निरभउ दाता हरि जीउ मेरै नालि ।।
जे हरि छोडउ तउ कुलि लागै गालि ।।३।।
—भैरउ महला ३, पृष्ठ ११५४

---

१. वसुर्वसुमना: सत्य: समात्मासम्मित: सम: । अमोघ: पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृति: ।।
गुरुर्गुरुतमो धाम: सत्य: सत्यपराक्रम: । निमिषोऽनिमिष: स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधी: ।।
धर्मगुब् धर्मकृद् धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् । अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षण: ।।
सत्त्ववान् सात्त्विक: सत्य: सत्यधर्मपरायण: । अभिप्रिय: प्रियार्होऽर्ह: प्रियकृत् प्रीतिवर्धन: ।।
—महाभारत, अनुशासनपर्व १४९/२५,३६,६४,१०६

निरवैरु—निराहारी **निरवैरु** समाइआ। धारि खेलु चतुरभुज कहाइआ।
सावल सुंदर रूप वणावहि बेणु सुनत सभ मोहैगा ॥६॥
—मारु सोलहे महला ५, पृष्ठ १०८२

अकाल मूरति, अजूनी, सैभं—

अमोध दरसन **अजूनी संभउ** ॥ **अकाल मूरति** जिसु कदे नाही खउ ॥
अबिनासी अबिगत अगोचर सभु किछु तुझ ही है लगा ॥७॥
—मारु सोलहे महला ५, पृष्ठ १०८२

गुर प्रसादि—

१. **गुर परसादी** विदिआ वीचारै पड़ि पड़ि पावै मानु ॥
आपा मधे आपु परगासिआ पाइआ अंम्रितु नामु ॥१॥
—प्रभाती महला १, पृष्ठ १३२६

२. राम राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होइ ॥
गुर परसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ ॥१॥
गूजरी महला ३, पृष्ठ ४९१

३. एक अचरजु जन देखहु भाई ॥ दुबिधा मारि हरि मंनि वसाई ॥
नामु अमोलकु न पाइआ जाइ ॥ **गुर परसादि** वसै मनि आइ ॥३॥
—धनासरी महला ३, पृष्ठ ६६३

४. **गुर किरपा** जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगति पछानी ॥
नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ जिउ पानी संगि पानी ॥११॥
—सोरठि महला ९, पृष्ठ ६३३-३४

मंगलाचरण में आये उपरोक्त दसों शब्दों में क्रमशः गुरु-प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया गया है कि उक्त मंगलाचरण भगवान श्री विष्णु के कृत्रिम नामों का एक शिरोमणि उपदेश है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हमारे सद्गुरु भगवान विष्णु के अनन्य भक्त हैं।

लेखक ने उपरोक्त मंगलाचरण का अर्थ गुरुवाणी के प्रमाणों द्वारा ही किया है, इसलिये लेखक ने किसी प्रकार की मनमानी नहीं की। यदि कोई व्यक्ति उपरोक्त मंगलाचरण की गुरुवाणी द्वारा ही प्रस्तुत व्याख्या को मानने को तैयार नहीं है, तो स्पष्ट है कि ऐसा स्वेच्छाचारी व्यक्ति गुरुवाणी को नहीं मानता। अतः इस प्रकार के हठी व्यक्ति को नमस्कार ही भला है।

विरोधी मत—कतिपय विरोधियों का कथन है कि उपरोक्त मंगलाचरण विशुद्ध निर्गुण, निराकार ब्रह्म का ही सूचक है, भगवान विष्णु का कदापि नहीं, क्योंकि गुरुवाणी में अनेक स्थलों पर ब्रह्मा एवं विष्णु को रोगी आदि कह कर वर्णित किया गया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान विष्णु को परमात्मा नहीं माना जा सकता। उदाहरणार्थ :—

१. रोगी ब्रहमा बिसनु सरुद्रा रोगी सगल संसारा ॥
हरि पदु चीनि भए से मुकते गुर का सबदु वीचारा ॥४॥
—भैरउ असटपदीआ महला १, पृष्ठ ११५३

२. किसनु सदा अवतारी रूधा कितु लगि तरै संसारा ॥
गुरमुखि गिआनि रते जुग अंतरि चूकै मोह गुबारा ॥३॥
—वडहंसु महला ३, पृष्ठ ५५९

३. ब्रहमा बिसनु महादेउ त्रै गुण रोगी विचि हउमै कार कमाई ॥
जिनि कीए तिसहि न चेतहि बपुड़े हरि गुरमुखि सोझी पाई ॥२॥
—सूही महला ४, पृष्ठ ७३५

४. जनमि न मरै न आवै न जाइ ।
नानक का प्रभु रहिओ समाइ ॥४॥१॥
—भैरउ महला ५, पृष्ठ ११३६

५. न संखं न चक्रं न गदा न सिआमं ॥
अस्चरज रूप रहंत जनमं ॥
नेत नेत कथंति बेदा ॥५७॥
—सलोक सहसक्रिती महला ५, पृष्ठ १३५९

६. कोटि बिसन कीने अवतार ॥ कोटि ब्रहमंड जाके ध्रमसाल ॥
कोटि महेस उपाइ समाए ॥ कोटि ब्रहमे जगु साजण लाए ॥१॥
ऐसो धणी गुविंदु हमारा ॥ बरनि न साकउ गुण बिसथारा ॥१॥
रहाउ ॥
—भैरउ महला ५ असटपदीआ, पृष्ठ ११५६

७. एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥
इकु संसारी **इकु भंडारी** इकु लाए दीबाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥
ओहु वेखै **ओना नदरि न आवै** बहुता एहु विडाणु ॥३०॥
—श्री जपु जी साहिबु, पृष्ठ ७

विरोधियों का इस विषय में यह भी कथन है कि उक्त प्रकार के अनेकों अन्य प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इसलिए उक्त प्रमाणों के होते हुए विष्णु आदि देवताओं को परमात्मा नहीं माना जा सकता।

समाधान—यदि विरोधियों के कथनानुसार यह सत्य है कि भगवान श्री विष्णु को परमेश्वर न माना जाय, तो फिर निम्नलिखित गुरुप्रमाणों का इन विरोधियों के पास क्या उत्तर है ?

गुरुवाणी में परस्पर विरोधी प्रमाण क्यों ?

१. रोगी ब्रहमा बिसनु सरुद्रा रोगी सगल संसारा ॥
हरि पदु चीनि भए से मुकते गुरु का सबदु वीचारा ॥४॥
भैरउ असटपदीआ महला १ पृष्ठ, ११५३

विरोधियों द्वारा प्रस्तुत यह प्रमाण गुरुवाणी में प्राप्त है, तो दूसरी ओर इन्हीं गुरु नानकदेव जी ने यह भी कहा है :—

दुरमति हरणाखसु दुराचारी ॥ प्रभु नाराइणु गरब प्रहारी ॥
प्रहलाद उधारे किरपा धारी ॥४॥
—गउडी महला १, पृष्ठ २२४

इस गुरुवाक में प्रहलाद का उद्धार करने वाला नरसिंह रूप भगवान विष्णु का अवतार है, वह प्रभु, नारायण, गर्व-प्रहारी है। तब फिर गुरु नानकदेव जी ने (विरोधियों द्वारा प्रस्तुत) भैरउ राग वाले शब्दों में श्रीविष्णु को रोगी क्यों कहा है ?

२. किसनु सदा अवतारी रूधा कितु लगि तरै संसारा ॥
गुरमुखि गिआनि रते जुग अंतरि चूकै मोहु गुबारा ॥३॥
—वडहंसु महला ३, पृष्ठ ५५९

यदि यह प्रमाण है तो दूसरी ओर यह भी लिखा है :—

संत जना के हरि जीउ कारज सवारे ॥ प्रहलाद जन के इकीह कुल उधारे ॥
गुर कै सबदि हउमै बिखु मारे ॥ नानक राम नामि संत निसतारे ॥५॥१०॥२०॥
—भैरउ महला ३, पृष्ठ ११३३

श्रीगुरु अमरदास द्वारा प्रोक्त **वडहंसु राग** वाले प्रमाण से स्पष्ट होता है कि कृष्ण (विष्णु) सदैव अवतार लेने में ही व्यस्त है, फिर किस के पीछे लगकर

कोई मनुष्य भवसागर को पार करेगा ? भावार्थ यह कि भगवान विष्णुजी की भक्ति करने से किसी का भी उद्धार नहीं हो सकता। यदि ऐसा ही है तब फिर इन्हीं गुरु अमरदास जी ने **भैरउ राग** में भगवान श्री विष्णु के भक्त प्रहलाद के इक्कीस कुलों का उद्धार विष्णु द्वारा होना क्यों माना है ?

३. ब्रहमा बिसनु महादेउ त्रै गुण रोगी विचि हउमै कार कमाई ॥
जिनि कीए तिसहि न चेतहि बपुड़े हरि गुरमुखि सोझी पाई ॥२॥
—सूही महला ४, पृष्ठ ७३५

दूसरी ओर गुरु रामदास जी ने यह भी कहा है :—

संगति का गुनु बहुतु अधिकाई पड़ि सूआ गनक उधारे ॥
परस नपरस भए कुबिजा कउ लै बैकुंठि सिधारे ॥१॥
अजामल प्रीति पुत्र प्रति कीनी करि नाराइण बोलारे ॥
मेरे ठाकुर कै मनि भाइ भावनी जमकंकर मारि बिदारे ॥२॥
—नट महला ४, पृष्ठ ९८१

श्रीगुरु रामदास जी द्वारा प्रोक्त इस वाणी में पापिनी गणिका का उद्धार करने वाले श्रीविष्णु स्वयं तथा कुबजा को वैकुण्ठ ले जाने वाले श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार हैं जिनको श्री गुरुजी 'मेरे ठाकुर कै मन भाइ भावनी जमकंकर मारि बिदारे' आदि कह रहे हैं। पर दूसरी ओर विष्णु को त्रैगुण-रोगी क्यों बता रहे हैं ? विरोधी विद्वान इसका उत्तर दें।

४. जनमि न मरै न आवै न जाइ ॥ नानक का प्रभु रहिओ समाइ ॥४॥१॥
—भैरउ महला ५, पृष्ठ ११३६

दूसरी ओर यह भी कहा है :—

अपुने सेवक की आपै राखै आपे नामु जपावै ॥
जह जह काज किरति सेवक की तहा तहा उठि धावै ॥१॥
सेवक कउ निकटी होइ दिखावै ॥
जो जो कहै ठाकुर पहि सेवकु ततकाल होइ आवै ॥१॥रहाउ॥
—आसा महला ५, पृष्ठ ४०३

श्री गुरु अर्जुनदेव जी ने जहां भैरउ राग में अपने प्रभु को जन्म-मृत्यु से रहित तथा किसी स्थान-विशेष से आने-जाने वाला न होने के कारण सर्वव्यापक बताया है, वहां इसके विपरीत राग आसा में श्री गुरुजी पहले ही (पृष्ठ ४०३

पर) कह चुके हैं कि भक्तों की रक्षा के लिए भगवान तत्काल उपस्थित हो जाता है। वह कहां से उपस्थित हो जाता है जबकि वह सर्वत्र व्याप्त है? विरोधी विद्वान इसका उत्तर स्वयं सोचें।

५. न संखं न चक्रं न गदा न सिआमं ॥
अस्चरज रूपं रहंत जनमं ॥ नेत नेत कथंति बेदा ॥५७॥

—सलोक सहसक्रिती महला ५, पृष्ठ १३५९

परन्तु दूसरी ओर यह भी कहा है :—

बलि बलि जाउ सिआम सुंदर कउ अकथ कथा जा की बात सुनी ॥
जन नानक दासनि दासु कहीअत है मोहि करहु क्रिपा ठाकुर अपुनी ॥४॥२८॥११४॥

—बिलावलु महला ५, पृष्ठ ८२७

पंचम गुरुजी ने परमात्मा को शंख, चक्र, गदा और श्याम रंग आदि से रहित माना है, परन्तु राग बिलावलु वाले शब्द में गुरुजी परमात्मा के श्याम रंग पर बलिहारी होने की बात कहते हैं। ऐसा क्यों?

६. कोटि बिसन कीने अवतार ॥ कोटि ब्रहमंड जा के धरमसाल ॥
कोटि महेस उपाइ समाए ॥ कोटि ब्रहमे जगु साजण लाए ॥१॥
ऐसो धणी गुविंदु हमारा ॥ बरनि न साकउ गुण बिसथारा ॥१॥रहाउ॥

—भैरउ महला ५, पृष्ठ ११५६

यदि यह प्रमाण गुरुवाणी में प्राप्त है तो दूसरी और यह भी लिखा है :—

पांच बरख को अनाथु ध्रू बारिकु हरि सिमरत अमर अटारे ॥
पुत्र हेति नाराइणु कहिओ जमकंकर मारि बिदारे ॥१॥
मेरे ठाकुर केते अगनत उधारे ॥
मोहि दीन अलप मति निरगुण परिओ सरणि दुआरे ॥१॥रहाउ॥
बालमीकु सुपचारो तरिओ बधिक तरे बिचारे ॥
एक निमख मन माहि अराधिओ गजपति पारि उतारे ॥२॥
कीनी रखिआ भगत प्रहिलादै हरनाखस नखहि बिदारे ॥
बिदरु दासी सुतु भइओ पुनीता सगले कुल उजारे ॥३॥
कवन पराध बतावउ अपुने मिथिआ मोह मगनारे ॥
आइओ साम नानक ओट हरि की लीजै भुजा पसारे ॥४॥२॥

—मारू महला ५, पृष्ठ ९९९

प्रिय सज्जनो ! गुरुवाणी के इस मारू महला ५ वाले प्रमाण में ध्रुव, प्रहलाद तथा विदुर आदि भक्तों का उद्धार साकार रूप भगवान विष्णु द्वारा किया गया बताया है। इन प्रसंगों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि निराकार, निर्गुण परमात्मा ने किसी भक्त का उद्धार नहीं किया। विदुर का प्रसंग लोक-प्रसिद्ध है। भगवान श्रीविष्णु के अवतार श्रीकृष्ण ने विदुर का उद्धार किया था। इसी प्रकार भगवान श्रीविष्णु के अवतार श्रीनरसिंह ने भक्त प्रहलाद का उद्धार किया था। इन प्रसंगों से स्पष्ट होता है कि पंचम गुरु श्री अर्जुनदेव ने भगवान श्रीविष्णु को ही 'मेरे ठाकुर केते अगनत उधारे' लिखा है और अन्त में अपने लिये प्रार्थना की है कि 'लीजै भुजा पसारे' अर्थात् हे भगवान् ! अपनी शरण में मुझे भी ले लो। परन्तु दूसरी ओर कोटि विष्णु होने की बात भी कही है। इस प्रकार विरोधी सज्जन स्वयं ही बतलाने की कृपा करें कि इस प्रकार के अनेकों परस्पर विरोधी विचार गुरुवाणी में क्यों विद्यमान हैं ?

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥
आहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥३०॥

—श्रीजपुजी साहिब, पृष्ठ ७

इस उपरोक्त ३०वीं पउड़ी के सिद्धान्त के सवर्था उलट २७वीं पउड़ी में पहले ही भगवान् श्रीविष्णु देवजी की महानता दिखा आये हैं। फिर ऐसा क्यों ? देखो :—

सो दरु केहा सो घर केहा जितु बहि सरब समाले ॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ॥
केते राग परी सिउ कहिअनि केते गावणहारे ॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावे राजा धरमु दुआरे ॥
गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ॥
गावहि **ईसरु बरमा देवी** सोहनि सदा सवारे ॥
गावहि **इंद** इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ॥
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे ॥
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ॥
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले ॥

गावनि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ॥
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ॥
सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते गावनि से मैं चिति न आवानि नानकु किआ वीचारे ॥ २७ ॥
—श्री जपु जी, पृष्ठ ६

श्री जपुजी की २७वीं पउड़ी को यदि विचारपूर्वक पढ़ा जाये तो यहां पर भगवान् श्रीविष्णु देवजी का यशोगान ही सिद्ध होता है। इस प्रकार कि पवन, पानी, अग्नि, धर्मराज, चित्रगुप्त, शिव, ब्रह्मा, देवी (दुर्गा) और इन्द्र इत्यादि सभी भगवान् श्रीविष्णु देवजी का ही यशोगान कर रहे हैं। परन्तु दूसरी ओर इसी श्रीजपुजी की ३०वीं पउड़ी में श्रीविष्णु देवजी की असमर्थता क्यों दिखाई गई है ? यथा—ओहु वेखै ओना नदरि न आवै। ऐसा क्यों ?

उपरोक्त इन सभी प्रमाणों पर विचार करने के उपरान्त निष्कर्ष यह निकलता है कि गुरुवाणी का मंगलाचरण (मूलमंत्र) उकार स्वरूप भगवान विष्णु की स्तुति से ही सम्बन्धित है। इसलिये सिक्ख पन्थ एक वैष्णव मत है। फिर आधुनिक सिक्ख विचारक स्वयं को हिन्दुत्व से सर्वथा अलग कौम के रूप में प्रस्तुत करने का दुस्साहस किस आधार पर कर रहे हैं ?

आदिग्रन्थ के आधार पर सिक्ख पन्थ की समीक्षा

हम हिन्दू हैं

राजेन्द्रसिंह निराला

विषयसूची

१. सिक्ख अलग कौम नहीं
२. गुरुओं, सन्तों एवं भक्तों की वाणी में विष्णुभक्ति
३. गुरुधर में मूर्तिपूजा
४. हमारे पूज्य गुरु और वेदशास्त्र
५. अनंद-खण्डन विवाह मण्डन
६. श्री अकाल तख्त किसका है ?
७. आदिग्रन्थ और कृपाण
८. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब सिक्खों के गुरु नहीं
९. गुरुधर में नमस्कार
१०. गुरुधर में ब्राह्मण-सत्कार
११. गुरु और गुरु का शब्द एक नहीं
१२. गुरु और गुरुमन्त्र
१३. गुरुवाणी में रामनाम की महिमा
१४. गुरुवाणी में वेदान्त
१५. वेदान्तः पुराने और नए गुरु

भारत-भारती
२/१८, अन्सारी रोड़,
नई दिल्ली-११०००२